Think India (Quarterly Journal)
ISSN: 0971-1260 Vol-22, Special Issue-08
in collaboration with
Indira Gandhi Government Post Graduate College,
Bangarmau, Unnao-209868, Uttar Pradesh, India

संस्कृत वाङ्मय में योग

डॉ0 उमा सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–संस्कृत
महाराजा बिजली पासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
आ ियाना, लखनऊ।
ई–मेलःdrumasingh115@gmail.com

भोध सारां ाः

संस्कृत वाङमय वि व का प्राचीनतम तथा वृहदतम वाङमय है जिसके ज्ञान–गर्भ में वि व को समस्त ज्ञान पल्लवित तथा पोशित हुआ है। भारतीय संस्कृति का प्राणत्व संस्कृत वाङमय में ही समावेशिटत है। भारत की तपोभूमि पर संस्कृति की अजस्र ऊर्जा प्रवाहित होती रहती है। ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा संवेगाात्मक भाक्ति के सम्वर्द्धन से मानव अध्यात्म की ओर मुड़कर संस्कृति से अनुप्राणित होता रहता है तथा दुःख के निवारण के लिए पुरूशार्थ (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) वि ेश तथा मोक्ष की महत्ता को समझते हुए आत्मा के भुद्ध रूप ज्ञानावस्था की ओर उन्मुख होता है और उस परमतत्व की प्राप्ति में सफल होता है।

योग भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है।आत्मा को परमात्मा से जोड़ने का साधन है। स्वान्तः से समस्त विकारों को भस्मभूत कर आत्मनिरोध एवं आत्मानु ाासन की उपासना तथा भाारीरिक व मानसिक वृत्तियों को संयमित और संतुलित करने की पद्धति ही योग है। योग साधना की अजस्र धारा जीवन द ानि से लेकर सम्पूर्ण वैदिक तथा लौकिक संस्कृत साहित्य, ज्योतिश, धर्म ाास्त्र तथा अन्य ज्ञान भााखाओं में प्रवाहित हो रही जिसका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत भाोध–पत्र में किया जायेगाा।

मुख्य बिन्दुः *संस्कृत वाङमय, योग, पुरूशार्थ, साहित्य, ज्योतिश, धर्म ाास्त्र।*

मानव भारीर प्रकृतिजन्य है। अविद्या अथवा अज्ञान के कारण जीव अपने भारीर में विभिन्न प्रकार की उपाधियों को धारण करता है और उन्हीं उपाधियों को जो अवास्तविक होते हुए भी सत्य रुप में भासित होती हैं, सत्य मान लेता है तथा सांसारिक व्यूह में फंसा हुआ भ्रामित होता है। इन समस्त अवास्तविक उपाधियों से उपरत होकर सत्य तत्व से युक्त होना ही योग है।

योग का अर्थ 'मिलना', 'जुड़ना', 'युक्त होना' या 'तद्भूत हो जाना' है। योग के प्रारंभिक एवं अनिवार्य तत्व सुदृढ धैर्य एवं निरन्तर अभ्यास है। योग जड़ संसार से चेतन आत्मा की ओर यात्रा है। बाह्य जगत से अन्दर की ओर जाने वाला मार्ग है। महर्शि पतजंलि ने *योगसूत्र* में कहा है– *'योगा ित्तवृत्तिनिरोधः'*[1] अर्थात् चित्त की वृत्तिओं का निरोध ही योग है। महर्शि पतजंलि ने *योगसूत्र* में अश्टांग योग बताया है–यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), नियम (ौच, संतोश, तप, स्वाध्याय, ई वर प्रणिधान), आसन (सिद्धासन, वज्रासन, कमलासन इत्यादि), प्राणायाम (वास–प्र वास की गति को नियंत्रित करना), प्रत्याहार (इन्द्रियों का वाह्य विशयों से हटकर अर्न्तमुखी हो जाना), धारणा (ारीर के किसी स्थान वि ेाश पर चित्त को केन्द्रित करना), ध्यान (चित्त का समस्त वृत्तियों से निरुद्ध हो जाना) एवं समाधि (ध्येय वस्तु का आकार रूप ग्रहण होना)।[2] इनके अभ्यास के माध्यम से चित्त की

Think India (Quarterly Journal)
ISSN: 0971-1260 Vol-22, Special Issue-08
in collaboration with
Indira Gandhi Government Post Graduate College,
Bangarmau, Unnao-209868, Uttar Pradesh, India

वृत्तियों को सांसारिक विशय भोगों से निवृत्त कर उस सत्य स्वरूप परम तत्व आत्मा के साथ संयुक्त करना ही योग का परम लक्ष्य है।

योग के अनेक नाम हैं यथा–राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, लययोग, सन्यासयोग, बुद्धियोग, हठयोग इत्यादि। इनमें विधियॉ चाहे जो भी अपनायी जाये किन्तु सबका एकमेव लक्ष्य आत्मानुसन्धान एवं आत्मतत्व की प्राप्ति ही है। वेंदों, उपनिशदों, महाभारत, भागवतगीता तथा पुराणों में योग का उल्लेख हुआ है।

वेद भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ हैं तथा योग भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। वेद में योग 'युज्' (जोड़ना या मिलाना, रुधादि वर्ग की धातु) से निश्पन्न है। योग के बीज *ऋग्वेद* में भी पाये जाते है। *ऋग्वेद* में आया है–'विज्ञलोग, पुरोहित एवं यजमान अपने मनों को केन्द्रित करते हैं और प्रार्थनाओं को विज्ञ, महान् (सविता) में वे लगाते है, जो सभी प्रार्थनाओं को जानने वाला है।' *ऋग्वेद* के प्रथम मंडल के पॉचवें सूक्त के तीसरे मंत्र में योग का उल्लेख मिलता है–

'स धा नो योग आभुवत। स राये स पुरन्ध्याम गमद् वाजेभिरा स नः।'[3]

अर्थात पूर्वोक्त वि ि ाश्ट गुण युक्त वह इन्द्र हमारे उस अप्राप्त पुरुशार्थ रूपी योग की प्राप्ति में सहायक बने।

भारतीय मनीशा के प्रमुख ग्रन्थ उपनिशद्, जहॉं आत्म तत्व का निरूपण ही परम लक्ष्य है, में उस परम तत्व 'आत्म–तत्व' को प्राप्त करने के प्रमुख साधन योग का अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है। कुछ उपनिशदो में 'योग' शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जैसा वह योगसूत्र में प्रयुक्त है। कठोपनिशद् में कहा गया है कि 'विज्ञ लोग योग द्वारा परमात्मा का ध्यान करके तथा मन को अन्तरात्मा में स्थिर करके आनन्द एवं चिन्ता से मुक्त हो जाते हैं'[4]। वहीं उपनिशद कहती है कि जिसमें इन्द्रियॉं (मन व बुद्धि) स्थिर और संयमित हो जाती हैं वही योग है–

'तां योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।'[5]

'योग' शब्द *तैत्तरीय उपनिशद* में भी आया है, जहॉ विज्ञानमय आत्मा के विशय में कहते हुए योग को इसका आत्मा कहा गया है।[6] प्रश्नोपनिशद् में 'ओम्' की तीन मात्राओं (अ,उ,म्) का उल्लेख किया गया है।[7] भवेता वतर उपनिशद् में 'ध्यानयोग' शब्द आया है–

'ते ध्यानयोगानुगता अप यन्देवात्म ाक्ति स्वगुणैर्निगूढम्[8]।

भवेता वतर उपनिशद् में ही 'आसन' एवं 'प्राणायाम' का उल्लेख है तथा सफल योगाभ्यास के लक्षण प्रकट किये गये हैं।[9] उक्त उपनिशद् में योग की व्याख्या विस्तार से हुई है, जिसमें सर्वप्रथम योगाभ्यास के लिए उचित आसन का उल्लेख है, यथा–' ारीर को सीधा रखकर तीन स्थानों को ऊॅचा रखना, यथा छाती, गले एवं सिर को।[10] भवेता वतरोपनिशद् में योगाभ्यास के प्रथम अनुकूल लक्षण इस प्रकार व्यक्त किये गये है–'लघुत्व अर्थात भारीर का हलकपत, आरोग्य, अलोलुपता (लोभहीनता), भारीर के रंग का प्रसार या दीप्ति (चमक), स्वर–सौश्ठव, शुभ या सुखद भारीर–गन्ध, मूत्र एवं मल की अल्पता।[11]

छान्दोग्योपनिशद् में 'आत्मनि सर्वेन्द्रियाणि प्रतिश्ठाप्य' कहकर सम्भवतः 'प्रत्याहार' की ओर निर्देश किया है।[12] वृहदारण्यक उपनिशद ने प्राणायाम की ओर संकेत किया है–

Think India (Quarterly Journal)
ISSN: 0971-1260 Vol-22, Special Issue-08
in collaboration with
Indira Gandhi Government Post Graduate College,
Bangarmau, Unnao-209868, Uttar Pradesh, India

'तस्मादेकमेव व्रतं चरेत् प्राणाच्चैव अपान्याच्च'।[13]

अर्थात 'उसे एक व्रत करना चाहिए, यथा सांस लेना एवं सांस छोड़ना।'

उपनिशद 'योग' शब्द का न केवल प्रयोग करते हैं प्रत्यूत योग के कुछ स्तरों एवं उसकी पद्वति की भी व्यवस्था करती हैं जिनके द्वारा परमात्मा की अनुभूति होती है। इसप्रकार स्पश्ट है कि योग के पारिभाशिक भाब्द उपनिशद–काल से ही विकसित हो रहे थे और पतंजलि ने उन्हें उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त किया जो कई शतियों से प्रयोग में चले आ रहे थे।

पाणिनि ने 'यम' एवं 'नियम' (जो योग के दो अंग है) दो शब्दों, योग एवं 'योगिन्' को 'युज्' धातु में 'वितृश' (अर्थात इन्) प्रत्यय के साथ निश्पन्न माना है।[14]

आपस्तम्बधर्मसूत्र में एक भलोक उद्धत किया गया है, जिसका अर्थ है– 'इस जीवन में दोशों का ना ा योग से होता है, विज्ञ व्यक्ति उन दोशों का जो सभी प्राणियों को हानि पहुॅचाते हैं, मूलीच्छेद करके भाान्ति (मोक्ष) की प्राप्ति करते हैं। इस धर्मसूत्र में 15 दोशों का उल्लेख किया है, यथा क्रोध, काम, लोभ, कपट आदि जिनका ना ा योग से होता है। उसमें इन दोशो के विरोधी गुणों का भी उल्लेख है। इससे प्रकट होता है कि ई0पू0 चौथी या पॉचवीं भाताब्दी में मन को अनु ाासित करने के लिए योग नाम का अनु ाासन पर्याप्त रूप से विकसित हो चुका था।[15]

पतंजलि ने योग एवं व्याकरण पर ग्रन्थ लिखे। यह एक परम्परा है जो भर्तृहरि के वाक्यपदीय से अपेक्षाकृत पुरानी है। इस ग्रन्थ ने अपने प्रथम विभाग (ब्रह्मकाण्ड) में लिखा है 'काय, वाणी एवं बुद्धि में जो मल (दोश) उपस्थित होते है वे वैद्यक (चिकित्सा), व्याकरण (लक्षण) एवं अध्यात्म– ाास्त्र द्वारा दूर किये जा सकते हैं'–

कायवाम्बुद्विविषया ये मलाः समवस्मिताः।

चिकित्सा–लक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेषां विशुद्धयः।।[16]

न केवल वैदिक साहित्य में वरन् लौकिक साहित्य में भी योग की विस्तृत व्याख्या अनेक स्थलों पर आयी है। लौकिक संस्कृत साहित्य के वृहदतम् उपजीव्य ग्रन्थ महाभारत में योग–सम्बन्धी विशयों का विवेचन किया है।[17] महाभारत के भाान्तिपर्व में आया है कि योग के मार्ग में काम, क्रोध, लोभ भय एवं स्वप्न (निद्रा) पांच दोश पाये जाते हैं–

योगदोषान समुच्छिद्य पन्चयान् कवयो विदुः।

कार्म क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पंचमम्।।[18]

इसी अध्याय में एक महत्वपूर्ण बात यह कही गयी है कि हीन वर्ण का पुरूश या नारी भी धर्मानुकूल आचरण करने से इस मार्ग (योग) के द्वारा परम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। इसी अध्याय में योगाभ्यास के लिए योगी के निवास का उल्लेख है, ऐसे पर्वत एवं गुफाएं जहॉ कोई न रहता हो, मन्दिर , सूने घर, जिससे के एकाग्रता स्थापित हो सके। योगी को अपनी प्र ांसा या निन्दा करने वालों को समान दृश्टि से देखना चाहिए ओर किसी पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालने का प्रयास नहीं करना चाहिए।[19] भाान्तिपर्व में ही आया है कि योग की विधि एवं विधानों (नियमों) को जानने वाले उसी को योगी कहते है

Think India (Quarterly Journal)
ISSN: 0971-1260 Vol-22, Special Issue-08
in collaboration with
Indira Gandhi Government Post Graduate College,
Bangarmau, Unnao-209868, Uttar Pradesh, India

जो मन से इन्द्रियों को स्थिर कर देता है, बुद्धि से अपने मन को नि चल बना देता है, पाशाण की भांति अडिग हो जाता है, स्थाणु (पेड़ के तने) की भांति अकम्पित हो जाता है तथा पक्षी की भांति गतिहीन (नि चल) एंव भाक्ति ाली होता है।[19]

धर्म ाास्त्रों में भी योगविशयक वर्णन पाया जाता है। याज्ञवल्क्यस्मृति में याज्ञवल्क्य ने कहा है कि ह्रदय में दीपक के समान प्रकाि ात होते हुए आत्मा की अनुभूति की जानी चाहिए, इस अनुभूति से आत्मा का पुनर्जन्म नहीं होता।[20] याज्ञवल्क्य ने इतना और जोड़ दिया है कि योग की प्राप्ति के लिए मनुश्य को वह आरण्यक समझाना चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति ने योग को वेदान्त के अभिन्न भाग के रूप में सर्वोच्च स्थान दिया है और कहा है कि योग द्वारा आत्मद ान सर्वोच्च धर्म है–

अयं तु परमों धर्मो यद् योगेनात्मद ानम्।[21]

दक्षस्मृति ने दृढतापूर्वक कहा है–वह दे ा जहां ऐसा योगी रहता है जो योग में पारंगत और ध्यान करने वाला है, पवितत्र हो जाता है, तो उसके बन्धुओं के विशय में क्या कहना है अर्थातवे अव य ही पवित्र हो जायेंगे।

यस्मिन्देशे वसेद्योगी ध्यायी योगविचक्षणः।
सोऽपि देशो भवेत्पूतः किं पुनस्तस्य बान्धवाः।।[22]

वि व के सुप्रसिद्ध योगविशयक ग्रन्थों में गीता विि ाश्ट तथा प्रधान योगविशयक ग्रन्थ है। गीता में योगधारणा का उल्लेख किया है। गीता में आया है कि मन वास्तव में अस्थिर होता है, उसे संयमित करना बड़ा कठिन है, किन्तु अभ्यास एवं वैराग से उसे नियन्त्रण में रखा जा सकता है।[23]

'योगि चतवृत्तिनिरोधः' अर्थात् मन (चित्त) की चंचलताओं या क्रियाओं पर स्वामित्व स्थापना (नियन्त्रण) या उनको हटाने को व्यास ने कुछ काल के लिए 'समाधि' माना है।

भारतीय संस्कृति के वाहक एवं संरक्षक ग्रन्थ पुराणों में भी योग का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। मार्कण्डेयपुरण[24] एवं विश्णुपुराण[25] में विस्तार के साथ योगी–चर्या (योगी के आहार या आचरण या चरित्र) का उल्लेख है। मार्कण्डेयपुराण में आया है–मनुश्यों में (सामान्यतः) मान एवं अपमान प्रीति एवं (क्ले ा) उत्पन्न करते है, किन्तु ये दोनों योगो में विपरीत अर्थवाले होते है और उसके लिए सिद्धिकारक सिद्ध होते है। विश्णुपुराण में यह भी उल्लिखित है कि हिरण्यनाम ने जैमिनि के शिश्य तथा महान् योगीश्वर याज्ञवल्क्य से योग का ज्ञान प्राप्त किया।

शेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान्।
योगशासत्रं च मत्प्रोक्तं ज्ञेयं योगमभप्तसा।।[26]

भारतीय संस्कृति के अमर उपासक तथा संस्कृत साहित्य के निश्णात कवि महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में योग पर सम्यक दृश्टिपात किया है। रघुवं ाम्[27], कुमारसंभवम्[28], आभिज्ञान भााकुंतलम्[29], विक्रमोर्व ीम्[30], मालविकाग्निमित्रम्[31] में योग के उदाहरण प्राप्त होते हैं। कालिदास ने राजा रघु द्वारा किये गये योगाभ्यास का सुन्दर वर्णन उपस्थित किया है।[32] कालिदास ने सन्यासी रघु के अपवर्ग प्राप्ति के लक्ष्य

Think India (Quarterly Journal)
ISSN: 0971-1260 Vol-22, Special Issue-08
in collaboration with
Indira Gandhi Government Post Graduate College,
Bangarmau, Unnao-209868, Uttar Pradesh, India

की ओर संकेत किया है और उसकी तुलना महोदय (अभ्यूदया या भोग) से की है। ये दोनो भाब्द पतंजलि योगसूत्र में आये है।[33]

इसप्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पश्ट है कि यदि हम सम्पूर्ण संस्कृत वाड्.मय को देखें तो ज्ञात होता है कि योग केवल एक भाारीरिक क्रिया मात्र नही है वरन् विभिन्न सांसारिक विशयों से हटाकर निर्मल तथा वि ाुद्ध मन का एकाग्र भाव से परात्मा से जुड़ने की एक प्रक्रिया है। योग भाारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ एवं भाांतचित्त बनाते हुए अध्यात्म की ओर ले जाने का मार्ग है। इस विशय में यहां विवाद नहीं उठाया जा सकता कि योग का मार्ग उचित या सम्भाव्य (साध्य, सुकर या करणीय) है या नही। किन्तु सहस्त्रों वर्शों तक भारतवर्श में महान् व्यक्तियों ने योग के मार्ग का अनुसरण किया है, जिससे ये योग द्वारा अविद्या से आत्मा की स्वतन्त्रता के एवं जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त होने के वान्छित लक्ष्य को प्राप्त कर सके थे। योग की प्रणालियों एवं विधियों, वि ोशतः राजयोग की प्रणालियों एवं विधियों में आज के मनोवि लोशण, मानस चिकित्सा भाास्त्र, मानस नाट्य, नैतिक ि ाक्षा एवं चरित्र–ि ाक्षा की अधिका ा सभी सारगर्भित प्रणालियॉ एवं विधियां समाहित हो जाती है। योगाभ्यास में संलग्न व्यक्ति के गुणों की अभिव्यक्ति से यह प्रकट हो जाता है कि वह क्रम ाः आध्यात्मिक स्वरों में विकसित होने में सफलता प्राप्त करता जा रहा है।

सन्दर्भः

1. पतजंलि, *योगद निम्,* समाधिपाद/2, चौखम्भा प्रका ान, संस्करण वि0सं0 2067 (2010)।
2. पतजंलि *योगद निम्,* साधनपाद/2/29–30, चौखम्भा प्रका ान, संस्करण वि0सं0 2067 (2010)।
3. ऋग्वेद (मंडल 1/सूक्त 5/मंत्र 3)।
4. कठोपनिशद् (अध्याय 2/वल्ली 3/मंत्र 12)।
5. कठोपनिशद् (अध्याय 2/वल्ली 3/मंत्र 11)।
6. तैत्तरीय उपनिशद, ब्रह्मानन्द वल्ली/चतुर्थ अनुवाक/1।
7. प्रश्नोपनिशद् (5/5–6)।
8. भवेता वतर उपनिशद् (1/3)।
9. भवेता वतर उपनिशद् (2/8–13)।
10. भवेता वतर उपनिशद् (2/8)।
11. भवेता वतर उपनिशद् (2/11)।
12. छान्दोग्योपनिशद् (8/15)।
13. वृहदारण्यक उपनिशद (अध्याय 1/ब्राह्मण 5/मंत्र 23)।
14. पाणिनि अश्टाधायी।
15. आपस्तम्बधर्मसूत्र(1/8/23/3–6)।
16. भर्तृहरि *वाक्यपदीय (1/148)।*
17. महाभारत भाान्तिपर्व अध्याय 232–241।
18. महाभारत भाान्तिपर्व अध्याय 232–32।
19. महाभारत भाान्तिपर्व अध्याय 232–25।
20. महाभारत भाान्तिपर्व अध्याय 294/14–17, 306/14–17।
21. याज्ञवल्क्यस्मृति।
22. याज्ञवल्क्यस्मृति (1/8)।

Think India (Quarterly Journal)
ISSN: 0971-1260 Vol-22, Special Issue-08
in collaboration with
Indira Gandhi Government Post Graduate College,
Bangarmau, Unnao-209868, Uttar Pradesh, India

23. दक्षस्मति (7/45)।
24. मार्कण्डेयपुराण (38/26)।
25. विश्णुपुराण (2/13)–11,37, नाग प्रका ान, जवाहरनगर दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998।
26. विश्णुपुराण (4/4/107)।
27. कालिदास रघुवं ाम् (1/1)।
28. कालिदास कुमारसंभवम् (1/1)।
29. कालिदास आभिज्ञान भााकुंतलम् (1/1, 7/35)।
30. कालिदास विक्रमोर्व ीम् (1/1)।
31. कालिदास मालविकाग्निमित्रम् (1/1)।
32. कालिदास रघुवं ाम् (8/16–24)।
33. पतजंलि *योगद र्निम्,* प्रका ायोगापवर्गार्य दृ यम/2/18, चौखम्भा प्रका ान, संस्करण वि0सं0 2067 (2010)।